7091

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ४ अंक १२ : अप्रिल १९८१

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON | **Telephone : 22-4110, 22-3323**

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

Manufacturer and Exporter of Superior Quality Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष ४ : अंक १२
अप्रैल १९८१

☐

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक
जैन भवन
पी - २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

सूची

सनत्कुमार २५७
जीव २६०
जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ २६६
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २८१

सरस्वती
श्री चिन्तामणि जैन मन्दिर, बीकानेर

सनत्कुमार

—पूरणचंद सामसुखा

महाराज सनत्कुमार समग्र भारत के राजराजेश्वर चक्रवर्ती राजा थे। उनके अतुल प्रताप से भारतवर्ष के समस्त राजागण उनकी अधीनता स्वीकारने और आज्ञा-पालन करने को विवश हुए थे। सनत्कुमार चक्रवर्ती राजा के नाम से जितने विख्यात थे, तदपेक्षा अपने असाधारण रूप-लावण्य के लिए अधिकतर प्रसिद्ध थे। उनके स्वर्ण-वर्ण शरीर, सुगठित मनोपेत देह, सुपुष्ट पेशी समूह और सर्वोपरि उनके अनुपम लावण्य ने उन्हें इतना रूपवान बना दिया था कि उस समय सारे भारत में उनकी तरह रूपवान दूसरा कोई था ही नहीं। ऐसा लगता था कि कुशल शिल्पी ने सुन्दर स्वर्ण की मूर्ति गढ़ रखी है।

सनत्कुमार के रूप-लावण्य ने देवताओं तक की दृष्टि आकृष्ट कर ली थी। स्वयं देवराज इन्द्र ने अपनी सभा में सनत्कुमार के अनुपम रूप की प्रशंसा करते हुए कहा था कि देवलोक में देवताओं में भी ऐसा रूप मिलना दुर्लभ है। देवराज के मुख से ऐसी ख्याति सुनकर दो देवकुमारों के मन में सनत्कुमार को देखने की विशेष उत्सुकता हुई। वे दोनों स्वर्गलोक से चलकर मर्त्यलोक में आये और ब्राह्मण-वेश में सनत्कुमार के समक्ष उपस्थित हुए।

सनत्कुमार उस समय स्नान की तैयारी में थे। बलवान और सुनिपुण पुरुष उनके शरीर में सुगन्धित शतपाक और सहस्रपाक तेल मालिश कर रहे थे। देवगण सनत्कुमार के खुले शरीर को देखकर मुग्ध हो गये। सनत्कुमार द्वारा उनका परिचय और आने का कारण पूछे जाने पर उन्होंने देवराज इन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा और उसी हेतु अपने आगमन का समाचार कह सुनाया। सनत्कुमार उनके मुख से अपने रूप की प्रशंसा सुनकर गर्व और आनन्द से उत्फुल्ल हो उठे। वे दोनों देवकुमारों से बोले—"अभी मेरा रूप आप लोग क्या देख रहे हैं, स्नान के उपरान्त वस्त्राभरण धारण कर लेने पर जब सामन्तों और राजाओं सहित राजसभा में सिंहासन पर विराजूंगा, तब आप लोग मेरा रूप देखिएगा।"

दोनों देव फिर राजसभा में आये और सनत्कुमार के अनुपम रूप को देखकर विस्मित और मुग्ध हुए। सनत्कुमार ने उन्हें अपने पास बुलाकर सिंहासन के बगल में बैठाया और नाना प्रकार की बातचीत करने लगे।

इसी बीच दोनों में से एक की नासिका कुंचित हुई और वे अस्वस्थता बोध करने लगे। दूसरे देव उसकी अस्वस्थता का कारण जानने के लिए उसके साथ बात करने लगे। सनत्कुमार ने भी देवकुमार की अस्वस्थता देखी। उन्होंने देवकुमार की इस प्रकार एकाएक अस्वस्थता का कारण और दोनों क्या बातचीत कर रहे हैं, जब जानना चाहा, तब दूसरे देव ने कहा, "महाराज, हमलोग मानव-सौन्दर्य के उपादान सम्बन्ध में आलोचना कर रहे थे।" सनत्कुमार ने उनसे अपने वक्तव्य को और स्पष्ट करने को कहा तब उन्होंने उत्तर दिया, "महाराज, हमलोग आपका देव-दुर्लभ रूप तो देखकर मुग्ध हुए हैं, किन्तु मानव-शरीर चाहे कितना ही क्यों न सुन्दर हो, इसके उपादान रक्त, मांस प्रभृति अपवित्र पदार्थ हैं और इसके भीतर मल, मूत्र आदि सड़ी गन्धयुक्त वस्तुएँ हैं। इन सब पदार्थों की दुर्गन्ध लेकर इनके अणु-परमाणु आपके कण्ठ-स्वर के साथ बाहर निकल रहे हैं। आप लोग इस दुर्गन्ध के आदी हो गये हैं, अतएव आप लोग इस दुर्गन्ध का अनुभव नहीं करते, किन्तु हमारे वासस्थान या हमारे शरीर में किसी प्रकार की दुर्गन्ध न होने के कारण हम लोग इस दुर्गन्ध का अनुभव करते हैं और इसीलिए मेरे मित्र आपके पास बैठने से विशेष अस्वस्थता बोध कर रहे हैं।"

इतना कहकर दोनों देवकुमार विदा लेकर अदृश्य हो अपने धाम को पधार गये। सनत्कुमार दोनों देवकुमारों की बात सुनकर व्याकुल हो उठे। उनके रूप के गर्व और अभिमान पर गहरी ठेस लगी। वे सोचने लगे, "मनुष्य का सौन्दर्य कैसा असार है! शरीर के बाह्यावरण के भीतर नाना प्रकार के दुर्गन्धमय और अपवित्र पदार्थ भरे हैं और वहाँ मानो दुर्गन्ध का भण्डार भरा पड़ा है! शरीर के जिस सौन्दर्य पर मुझे इतना गर्व था, समस्त पृथ्वी में अद्वितीय सुन्दर पुरुष कहला कर अभिमान से जो छाती फुलाये रखता था, वह भी कितना तुच्छ है! यह देह एक दिन जराग्रस्त होगी और मृत्यु आकर इसका समस्त सौन्दर्य समाप्त कर देगी। इस नश्वर शरीर के ऊपर ही मैं अब तक गर्व करता था! मुझे धिक्कार है! जिससे फिर इस प्रकार का शरीर न धारण करना पड़े, जिससे जन्म, जरा, मृत्यु के कवल से सदा के लिए छुटकारा मिले, उसी के लिए सम्यक् चेष्टा करना प्रत्येक सत्पुरुष का कर्त्तव्य है।" इस प्रकार चिन्ता करते-करते वैराग्य के वशवर्ती हो चक्रवर्ती सनत्कुमार अपने विपुल राज्य, अप्रतिहत क्षमता, अतुलनीय वैभव और अनुपम सुन्दरी स्त्रियों का परित्याग कर केवल हाथ में भिक्षापात्र लेकर राजभवन से बाहर निकल पड़े। वे श्रमण-दीक्षा अंगीकार करके घोर तपस्या करने लगे।

कठोर तपस्या के कारण उनका मांस सूख जाने पर शरीर अस्थिचर्मावशिष्ट और रुग्ण हो उठा। पहले का वह अनुपम सौन्दर्य विलुप्त हो गया। एक बार वे ही दोनों देवकुमार फिर उनके पास आये। उनके शरीर की वर्तमान अवस्था देखकर वे दोनों अत्यन्त दुःखित हुए और उनके शरीर को पूर्व-सा कर देने की इच्छा प्रकट की। राजर्षि सनत्कुमार ने हँसते मुख उत्तर दिया, "शरीर का रोग निवृत्त करने में तो आप सक्षम हैं, किन्तु क्या संचित कर्म-रोग आपलोग निर्मूल कर सकते हैं? यदि कर्म-रोग निवारण की क्षमता आप लोगों में है, तब तो मैं आपलोगों की सहायता स्वीकार करने को प्रस्तुत हूँ। इच्छा होने पर मैं स्वयं ही अपना शरीर नीरोग और सुन्दर कर सकता हूँ, किन्तु इससे तो कर्म-रोग का क्षय नहीं होगा।" इतना कहकर उन्होंने अंगूठा मुख में डाला और कुछ क्षणों के बाद उसे बाहर निकाल कर दिखाया कि वह सम्पूर्ण नीरोग, पुष्ट और अत्यन्त सुन्दर हो गया है। देवगण यह देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और उनकी वन्दना कर अपने धाम को चले गये।

तत्पश्चात् राजर्षि सनत्कुमार घोर तपस्या और संयम के द्वारा सम्पूर्ण कर्म-राशि क्षय करके जन्म-जरा-मृत्यु को चिरकाल के लिए जीतकर शाश्वत और अव्याहत आनन्द के अधिकारी हुए।

जीव [२]

[पूर्वानुवृत्ति]

—हरिसत्य भट्टाचार्य

वैमानिक देव ज्योतिष्क देवों से भी ऊपर हैं। वे ऊर्द्ध लोक में रहते हैं। सुमेरु पर्वत के शिखर से ऊर्द्ध लोक का आरम्भ होता है। इसके १६ कल्प अथवा स्वर्ग किए गए हैं।[1] (१) सौधर्म कल्प उत्तर दिशा में और (२) ईशान कल्प दक्षिण दिशा में हैं। इन दो स्वर्गों के ऊपर क्रमशः (३) सनत्कुमार कल्प, (४) माहेन्द्र कल्प हैं। उसके ऊपर (५) ब्रह्म कल्प और (६) ब्रह्मोत्तर कल्प हैं। तदुपरि (७) लांतव और (८) कापिष्ट हैं। उस पर (९) शुक्र कल्प और (१०) महाशुक्र कल्प हैं। तत्पश्चात् (११) शतार व (१२) सहस्रार कल्प हैं। उसके ऊपर (१३) आनत व (१४) प्राणत हैं। बाद में (१५) आरण कल्प और (१६) अच्युत कल्प हैं। इन १६ कल्पों पर १२ इन्द्रों का अधिकार है। सौधर्मेन्द्र ईशानेन्द्र, सनत्कुमारेन्द्र और माहेन्द्र क्रमशः द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्वर्ग के अधिपति हैं। ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्प ब्रह्मेन्द्र के अधिकार में है। लांतव इन्द्र सप्तम और अष्टम कल्प का स्वामी है। शुक्रेन्द्र शुक्र और महाशुक्र कल्प का संरक्षण करता है। शतार इन्द्र का अधिकार ग्यारहवें और बारहवें स्वर्ग पर है। आनतेन्द्र, प्राणतेन्द्र, आरणेन्द्र और अच्युतेन्द्र क्रमशः १२ वें, १४ वें, १५ वें और १६ वें कल्प के अधिस्वामी हैं। १६ वें कल्प अथवा स्वर्ग तक जितने वैमानिक देव रहते हैं वे कल्पोत्पन्न कहलाते हैं। १६ स्वर्ग के ऊपर ग्रैवेयक नामक विमान है। उसके ऊपर अनुदिश विमान तथा उसके ऊपर अनुत्तर विमान है।

कल्पातीत विमानों में कल्पातीत नामक वैमानिक देव रहते हैं। १६ कल्प और कल्पातीत विमान ६३ विभागों (पटलों) में विभक्त हैं; जिनमें से सौधर्म और ईशान कल्प के कुल मिलकर ३१ पटल हैं। यथा—(१) ऋतु, (२) चन्द्र, (३) विमल, (४) वल्गु, (५) वीर, (६) अरुण, (७) नन्दन,

---

[1] श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्मत तत्वार्थ सूत्र अध्याय ४ सूत्र ३ "दशाष्ट-पंच-द्वादश विकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्तः" में १२ देवलोकों का विधान है। तथापि यहाँ १६ देवलोक लिखे हैं। यह तथा इसके आगे के देवलोकों का वर्णन तथा व्यंतरों का स्थान निर्णय वगैरह दिगम्बर शास्त्रों में विशिष्ट रूप से वर्णित है। भट्टाचार्यजी ने यहाँ उसी को ही उद्धृत किया प्रतीत होता है।

(८) नलिन, (९) रोहित, (१०) कांचन, (११) चंचद्, (१२) मारुत, (१३) ऋद्धीश, (१४) वैडूर्य, (१५) रुचक, (१६) रुचिर, (१७) अंक, (१८) स्फटिक, (१९) तपनीय, (२०) मेघ, (२१) हारिद्र, (२२) पद्म, (२३) लोहिताक्ष, (२४) वज्र, (२५) नंद्यावर्त, (२६) प्रभंकर, (२७) पिष्टाक, (२८) गज, (२९) मस्तक, (३०) चित्र और (३१) प्रभ। तृतीय और चतुर्थ स्वर्ग में सात समूह हैं : (३२) अंजन, (३३) वनमाल, (३४) नाग, (३५) गरुड, (३६) लांगल, (३७) बलभद्र और (३८) चक्र। पंचम और षष्ठ कल्प में ४ भाग हैं : (३९) अरिष्ट, (४०) देव समिति, (४१) ब्रह्म, (४२) ब्रह्मोत्तर। सातवें और आठवें स्वर्ग के दो भाग हैं : (४३) ब्रह्महृदय और (४४) लांतव। नवम, दशम कल्प में (४५) महाशुक्र नामक १ पटल है। एकादश और द्वादश कल्प में भी एक ही भाग (४६) सहस्रार है। १३ वें, १४ वें, १५ वें और १६ वें कल्प के कुल छः भाग हैं : (४७) आनत, (४८) प्राणत, (४९) पुष्पक, (५०) सातक, (५१) आरण और (५२) अच्युत। ग्रैवेयक विमान के अधोभाग के ३ विभाग हैं : (५३) सुदर्शन, (५४) अमोघ, (५५) सुप्रबुद्ध। ग्रैवेयक विमान के मध्य भाग में ३ पटल हैं : (५६) यशोधर, (५७) सुभद्र (५८) विशाल। ग्रैवेयक विमान के ऊपरवाले भाग में ३ पटल हैं : (५९) सुमन, (६०) सोमन और (६१) प्रीतिंकर। अनुदिश नामक विमान में एक ही पटल (६२) आदित्य है और इस विमान के ऊपर अनुत्तर विमान में (६३) सर्वार्थसिद्ध नामक एक पटल है।

उपरोक्त वर्णन से मालूम होगा कि, १६ कल्प में कुल ५२ पटल हैं। प्रत्येक पटल में ३ प्रकार के विमान अथवा निवासस्थान हैं : (१) इन्द्रक विमान, (२) श्रेणीबद्ध विमान और (३) प्रकीर्णक विमान। मध्य में इन्द्रक विमान और उसके आसपास श्रेणीबद्ध विमान रहता है। प्रत्येक श्रेणीबद्ध विमान में ६३ विमान होते हैं। पर ज्यों-ज्यों नीचे से ऊपर जाते हैं त्यों-त्यों एक एक श्रेणी कम होती जाती है। इस प्रकार ६२वें पटल में एक इन्द्रक विमान रहता है। उसके चारों ओर केवल ४ श्रेणी विमान होते हैं। जिस प्रकार इन्द्र विमान के चारों ओर श्रेणीबद्ध विमान होते हैं उसी प्रकार उसकी विदिशाओं में भी प्रकीर्णक अथवा पुष्प प्रकीर्णक विमान होते हैं। ६३वें पटल में प्रकीर्णक विमान नहीं हैं। वहाँ मध्यभाग में सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान और उसके आसपास विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक चार श्रेणीबद्ध विमान हैं।

देवों के भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक ऐसे चार भेद हैं यह हम जान चुके हैं। ये चार भाग दस भागों में विभक्त हैं। (१) इन्द्र, (२) सामानिक, (३) त्रायस्त्रिंश, (४) पारिषद, (५) आत्मरक्ष, (६) लोकपाल, (७) अनीक, (८) प्रकीर्णक, (९) किल्विषिक और (१०) आभियोग्य। भवनवासी और व्यंतर देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल जैसे भेद नहीं है। उपरोक्त दस भेद ज्योतिष्क और कल्पोपपन्न वैमानिकों में ही होते हैं। कल्पातीत देवों में कोई खास भेद नहीं होता, क्योंकि वे सब इन्द्र हैं और सामानिक देवों के भोगोपभोग इन्द्र के समान ही होते हैं; केवल इतना अन्तर होता है कि इन्द्र के अधीन सेना होती है, आज्ञाकारी सेवक होते हैं और राज्य ऐश्वर्य होता है। सामानिक देवों के पास यह कुछ नहीं होता। इन्द्र के ३३ मंत्री अथवा पुरोहित होते हैं। वे त्रायस्त्रिंश नाम से पुकारे जाते हैं। इन्द्र सभा के सभासद पारिषद् कहलाते हैं। इन्द्र के भी शरीर रक्षक देव होते हैं। लोकपाल उसके राज्य की रक्षा करते हैं। इन्द्र के सैनिक अनीकदेव कहलाते हैं। सेवक देवों को अभियोग्य और नीची श्रेणी के देवों को किल्विषिक कहते हैं।

नीचे रहने वाले समूह से ऊपर रहने वाला देवसमूह क्रमशः तेज, वर्ण (लेश्या), आयु, इन्द्रिय ज्ञान, अवधि ज्ञान, सुख और प्रभाव में विशेष उन्नत होता है। ज्यों-ज्यों उच्च देवलोक में जाते हैं त्यों-त्यों उनका मान कषाय, गति, देह प्रमाण और परिग्रह भी न्यून होते हुए दिखलाई देते हैं। देवयोनि में जन्म होना जीव के पुण्य के आश्रित है। भवन, व्यंतर और ज्योतिष्क देवों में कृष्ण, नील, कापोत और पीत—ये चार वर्ण होते हैं। सौधर्म और ईशान कल्प में केवल पीत वर्ण होता है। तीसरे और चौथे स्वर्ग के देवों का वर्ण कुछ पीत और पद्माभ होता है। पंचम से अष्टम कल्प तक के देवों का वर्ण पद्माभ और शुक्लाभ एवं इससे ऊपर के देवलोक वाले देवों का वर्ण शुक्ल होता है।

देव कोई मुक्त जीव नहीं होते। सिर्फ इतना ही कि, शुभ कर्म के योग से वे उत्तम प्रकार का सुख भोग सकते हैं। जन्म और मृत्यु का चक्कर तो वहाँ भी है। किसी-किसी बात में तो वे भूलोकवासी मनुष्यों के समान ही होते हैं। इन्हें भी उत्तम वस्तुओं से प्रेम और नापसन्द वस्तुओं से अप्रीति होती है। मनुष्य के समान देवों में भी विषय-वासना होती है। कितनी ही बातों में वे मनुष्यों से भिन्न हैं। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और सौधर्म तथा ईशान कल्प के देवों में मनुष्य तथा तिर्यंच के समान शरीर संयोगपूर्वक रमण

क्रिया होती है। तीसरे और चौथे स्वर्ग के देव रमणी का केवल आलिंगन करते हैं। पाँचवें से आठवें स्वर्ग तक के देव देवियों के रूप दर्शन में ही विषय सुख का अनुभव करते हैं। नवम्, दशम्, एकादश और द्वादश स्वर्ग के देव, देवियों के शब्द-श्रवण में ही तृप्तिलाभ करते हैं। १३वें से १६वें देवलोक तक के देव केवल देवांगनाओं के विचार मात्र से ही सन्तोष लाभ करते हैं। १६वें के आगे, ऊपर के देवलोकों में काम-लालसा नहीं है। मनुष्यादि जीवों का शरीर जिस उपादान से निर्मित है वे उपादान इस देव शरीर में नहीं होते। देवों में वीर्य-स्खलन और देवियों में गर्भ धारण क्रिया नहीं होती। देव मातृकुक्षि से उत्पन्न नहीं होते। इनका मैथुन केवल एक प्रकार का मानसिक सुख सम्भोग मात्र है।

नरक वासी जीव नारकी कहलाते हैं। नरक अधोलोक में है और एक के ऊपर दूसरा स्थित होने से एक दूसरे के आश्रित रहते हैं। घनांबु (घनोदधि), पवन और आकाश ये तीन प्रकार के द्रव्य प्रत्येक नरक में होते हैं। घनांबु आदि प्रत्येक पदार्थ २० हजार योजन तक विस्तृत होते हैं। नरक सात हैं : (१) घर्मा, (२) वंशा, (३) मेघा (सेला), (४) अंजना, (५) अरिष्टा, (६) मघवी (मघा) और (७) माघवी (माघवती)। वर्ण तथा स्वरूप भेद से सातों नरक निम्नलिखित नामों से पुकारे जाते हैं—(१) रत्नप्रभा, (२) शर्कराप्रभा, (३) बालुकाप्रभा, (४) पंकप्रभा, (५) धूमप्रभा, (६) तमःप्रभा, (७) तमस्तमःप्रभा अथवा महातमःप्रभा।

प्रथम नरक में ३० लाख, दूसरे में २५ लाख, तीसरे में १५ लाख, चौथे में १० लाख, पाँचवें में ३ लाख, छठ्ठे में ५ कम एक लाख और सातवें में ५ नरकावास हैं। कुल मिलकर ८४ लाख ७ जीवोत्पत्ति स्थान हैं। नारकी के जीवों का वर्ण अत्यन्त खराब होता है। उनमें विविध रूप धारण करने की शक्ति होती है। परन्तु इससे उन्हें अधिक यातना भोगनी पड़ती है। इनके दुःख अपार होते हैं। और उन्हें वे दुःख दीर्घकाल तक भोगने पड़ते हैं। असुरों के भड़काने से तथा स्वयमेव भी नारकी जीव परस्पर लड़ते हैं और इस प्रकार असह्य दुःख उठाते हैं।

मध्यलोक में मनुष्य रहते हैं। इस मध्यलोक में भी असंख्य द्वीप और समुद्र हैं। इन सब द्वीपों में जम्बूद्वीप मुख्य है। इसका व्यास एक लाख योजन है। जम्बूद्वीप सूर्य मंडल के समान ही गोलाकार है। इसके केन्द्र स्थान पर 'मन्दर मेरु' नामक पर्वत है। इसके आसपास महासागर किल्लोल करता है। महासागर भी अन्य महाद्वीपों से घिरा हुआ है।

जम्बूद्वीप से मिले हुए महासागर का नाम लवणोद है। इस समुद्र को जो द्वीप घेरे हुए है उसका नाम धातकीखण्ड है। धातकीखण्ड के चारों ओर कालोद समुद्र है। उसके आगे पुष्कर द्वीप है। सबके अन्त में स्वयंभू रमण नामक महासमुद्र है। बीच में बहुत से महाद्वीप तथा महासमुद्र हैं।

जम्बूद्वीप में सात क्षेत्र हैं: (१) भरत, (२) हैमवत, (३) हरिवर्ष, (४) विदेह, (५) रम्यक, (६) हैरण्यवत, (७) ऐरावत। ये क्षेत्र छः वर्षधर पर्वत अथवा कुलाचलों द्वारा एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। इन पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं: (१) हिमवान, (२) महाहिमवान, (३) निषध, (४) नील, (५) रुक्मी और (६) शिखरी। इन पर्वतों की पूर्व तथा पश्चिम दिशा में समुद्र है।

हिमवान सुवर्णमय है। महाहिमवान रजतमय है। निषध का रंग ऐसा है जैसा कि सुवर्ण के साथ ताम्र मिलने से होता है। चतुर्थ पर्वत नीलगिरि वैडूर्यमय है। पाँचवाँ पर्वत रौप्यनिर्मित और छठा स्वर्ण निर्मित है। इन छः पर्वतों के शिखर पर क्रमशः पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केशरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नामक सरोवर हैं। पर्वतों के समान ये सरोवर भी पूर्व-पश्चिम दिशा में फैले हुए हैं। प्रथम सरोवर एक हजार योजन लम्बा और ५०० योजन चौड़ा है। द्वितीय सरोवर पहले से दो गुना और तीसरा दूसरे से दोगुना है। चतुर्थ, पंचम और षष्ठ सरोवर क्रमशः तृतीय, द्वितीय और प्रथम के समान हैं। इनकी गहराई कोई दस योजन होती है।

प्रथम सरोवर में एक योजन विस्तृत एक कमल है। इसकी कर्णिका दो कोस की और पत्रवाले दो पत्ते एक-एक कोस के हैं। दूसरे कमल का परिमाण दो योजन है। तीसरे सरोवर के कमल का परिमाण चार योजन है। और चौथे, पाँचवें तथा छठे सरोवरके कमल का परिमाण क्रमशः तीसरे, दूसरे और पहिले सरोवरों के कमल के समान है। इन छः कमलों पर यथाक्रम (१) श्री, (२) ह्री, (३) धृति, (४) कीर्ति, (५) बुद्धि और (६) लक्ष्मी नाम वाली छः देवियाँ विराजमान हैं। इनमें से प्रत्येक का आयुष्य एक पल्योपम है। ये देवियाँ अपने-अपने स्थानों की स्वामिनी होती हैं। इनके भी सभासद् तथा सामानिक देव होते हैं। मुख्य कमल पर देवी बैठती है और उसके आस-पास वाले कमलों पर देव समूह बैठता है।

भरत आदि सात क्षेत्रों में क्रमशः निम्नलिखित नदियाँ बहती हैं—(१) गंगा तथा सिन्धु, (२) रोहिता तथा रोहितास्या, (३) हरिता तथा हरिकान्ता (४) शीता तथा शीतोदा, (५) नारी तथा नरकान्ता, (६) सुवर्णकुला तथा रूप्यकुला और (७) रक्ता तथा रक्तोदा। कुल मिलकर १४ नदियाँ हैं।

प्रत्येक क्षेत्र के पूर्व और पश्चिम में समुद्र है। ऊपर प्रत्येक क्षेत्र में जिन दो-दो नदियों का नामोल्लेख किया गया है, उनमें से पहली पूर्वी समुद्र में और दूसरी नदी पश्चिमी समुद्र में जाकर मिलती है। गंगा और सिन्धु में से प्रत्येक की उपनदियों की संख्या लगभग १४ हजार है। दूसरे, तीसरे और चौथे क्षेत्र की महानदियों में से प्रत्येक की उपनदियों की संख्या उपरोक्त उपनदियों से दोगुनी है। पाँचवें, छठे और सातवें क्षेत्र की महानदियों में से प्रत्येक की उपनदियाँ यथाक्रम (उत्तरोत्तर) आधी हो जाती है।

जम्बू द्वीप का विस्तार १ लाख योजन है। इसके अन्तर्गत भरत क्षेत्र का दक्षिणोत्तर विस्तार ५२६ $\frac{6}{19}$ योजन है। भरत क्षेत्र से लेकर विदेह क्षेत्र तक जितने क्षेत्र तथा पर्वत हैं उन प्रत्येक का विस्तार उत्तरोत्तर पूर्व के क्षेत्र व पर्वत से द्विगुण है। विदेह के आगे जो क्षेत्र तथा पर्वत है उनका विस्तार उत्तरोत्तर आधा है। भरत क्षेत्र में पूर्व पश्चिम की ओर समुद्र पर्यन्त विस्तृत एक विजयार्ध (वैताढ्य) नामक पर्वत है।

भरत क्षेत्र के ६ खण्ड हैं, जिनमें से तीन विजयार्ध के उत्तर में हैं। इन छः खण्डों पर विजय पताका फहराने वाला महीपाल अपने को चक्रवर्ती कह सकता है। उत्तर दिशा के तीन खण्डों पर जब तक विजय प्राप्त न करें तब तक नृपति अर्धविजयी माना जाता है। इसीलिए भरत क्षेत्र के मध्य में स्थित पर्वत का नाम विजयार्ध रखा गया है। इसे रजताद्रि भी कहते हैं। गंगा और सिन्धु नदी का पानी, विजयार्ध पर्वत के उत्तर भाग में बहता हुआ, इसी पर्वत के पत्थरों को भेदन करके दक्षिण समुद्र में मिलता है। इस पर्वत के उत्तर और दक्षिण में भी तीन-तीन खण्ड हैं। विजयार्ध के उत्तरवर्ती तीन खण्ड और दक्षिण के दोनों ओर के दो खण्ड म्लेच्छ खण्ड हैं। और मध्य में आर्यावर्त है। भरत क्षेत्र के पश्चिम, दक्षिण और पूर्व में समुद्र तथा उत्तर में कुलाचल है। जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों के भी इसी प्रकार खण्ड हैं।

दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें क्षेत्र में एक-एक गोलाकार पर्वत है। हैमवत क्षेत्र के गोलाकार पर्वत का नाम वृत्तवेदाढ्य है। हिमवान पर्वत पर स्थित पद्मसरोवर से दो नदियाँ निकली हैं जो भरतक्षेत्र में आती हैं। एक दूसरी रोहितास्या नदी हैमवत क्षेत्र के वृत्तवेदाढ्य नामक पर्वत के अर्ध भाग की प्रदक्षिणा करती हुई पश्चिम समुद्र में आ मिलती है। हैमवत क्षेत्र के उत्तर में महाहिमवान पर्वत है। इसमें से भी एक दूसरी नदी निकलती है। यह हैमवत क्षेत्र के वृत्तवेदाढ्य पर्वत के दूसरे आधे भाग की प्रदक्षिणा देती हुई

पूर्व समुद्र में आ मिलती है। तीसरे क्षेत्र में भी नदी और गोलाकार पर्वत की यही स्थिति है। दूसरा और तीसरा क्षेत्र जघन्य तथा मध्यम भोग भूमि समझा जाता है।

चौथे क्षेत्र का नाम विदेह है और उसके गोलाकार पर्वत का नाम सुमेरु है। इस सुमेरु पर्वत के उत्तर दक्षिण भाग में उत्कृष्ट भोगभूमि है। पूर्व और पश्चिम के भाग में ३२ कर्मभूमियाँ हैं। विदेह क्षेत्र में सीता और सीतोदा नामक दो नदियाँ हैं, जो पर्वत की प्रदक्षिणा करती हुई क्रमशः पूर्व तथा पश्चिम के समुद्र में समा जाती हैं। ३२ कर्मभूमियों में से हरेक में विजयार्ध (वैताढ्य) पर्वत और दो-दो उपनदियाँ होती हैं।

पञ्चम और षष्ठ क्षेत्र में दो-दो महानदियाँ और एक-एक पर्वत हैं। ये दो क्षेत्र मध्यम और जघन्य भोगभूमि माने जाते हैं। कर्मभूमि और भोग भूमि का वर्णन अब आगे करेंगे।

भरतक्षेत्र और ऐरावतक्षेत्र ये दो ऐसे हैं कि जहाँ कालचक्र के अनुसार जीव की आयु, शरीर और शक्ति आदि में परिवर्तन होता रहता है। जिस समय जीव के शरीरादि उत्कृष्ट स्थिति का उपभोग करते हों उस काल का नाम उत्सर्पिणी काल है, और जिस समय क्षीण स्थिति को भोगते हों उस काल का नाम अवसर्पिणी काल है। इन दो प्रकार के कालों के छः छः आरे हैं— (१) सुखमा-सुखमा, (२) सुखमा, (३) सुखमा-दुःखमा, (४) दुःखमा-सुखमा, (५) दुःखमा, (६) दुःखमा-दुःखमा। इस समय अवसर्पिणी काल का पाँचवा आरा 'दुखमा' चल रहा है। छठा आरा अत्यन्त दुःखपूर्ण है जो आगे आनेवाला है। उसके बाद पुनः उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होगा। काल के प्रभाव से जीव के आयु, शरीर और शक्ति आदि में न्यूनाधिकता होती है। इसी प्रकार भरत और ऐरावत की भूमि में भी कुछ परिवर्तन होते हैं।

जम्बूद्वीप के चारों ओर लवणोद महासमुद्र हैं। इस समुद्र के एक किनारे से उसके सामने वाले दूसरे किनारे तक का फासला (पाट) पाँच लाख योजन है। लवण समुद्र को धातकी खण्ड चारों ओर से घेरे हुए है। वह भी द्वीप है। इसका विस्तार लवणोद से दो गुना और जम्बूद्वीप से ४ गुना है। समुद्र सहित इसका व्यास १३ लाख योजन है। जम्बूद्वीप थाली के समान गोल होने के कारण इसके भीतर के पर्वत एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैले हुए हैं। धातकी खण्ड कंकण अथवा चक्र के समान है। यह खण्ड पहिए के आरों के समान पर्वतों से विभक्त है। पर्वतों के मध्य का प्रदेश एक-एक क्षेत्र

माना जाता है। इस खण्ड में १२ पर्वत दो मेरु और १४ क्षेत्र हैं। इसमें ६८ कर्मभूमि और १२ भोगभूमि हैं।

धातकी खण्ड के आगे कालोद समुद्र और उसके बाद पुष्कर द्वीप आता है। कालोद समुद्र का विस्तार आठ लाख योजन है। और पुष्कर द्वीप का विस्तार १६ लाख योजन है। पुष्कर द्वीप के आधे भाग में अर्थात् आठ लाख योजन के भीतर धातकी खण्ड के समान ही क्षेत्र और पर्वत हैं। शेष आठ लाख योजन में क्षेत्र विभाग आदि नहीं है। पुष्कर द्वीप के ठीक बीच में मानुषोत्तर नामक एक पर्वत है। इस पर्वत के बाहर मनुष्य की गति या आवास नहीं है। वहाँ विद्याधर और ऋद्धि प्राप्त ऋषियों की भी पहुँच नहीं है।[2] इसीलिए इसका नाम मानुषोत्तर रक्खा गया है। मानुषोत्तर पर्वत के बाहर केवल भोगभूमि है। वहाँ पशु ही रहते हैं।

जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और आधे पुष्कर द्वीप अर्थात् अढाई द्वीपों और लवणोद तथा कालोद समुद्र में मनुष्य जाति आ-जा सकती है। मनुष्य जाति के इस आवास स्थान में ६६ अन्तर्द्वीप हैं।[3] इन अन्तर्द्वीपों में रहने वाले मनुष्य भोगभूमिवासी कहलाते हैं। इनमें से कुछ वानराकार हैं तो कुछ अश्वाकार हैं। इन्हें म्लेच्छ कहा गया है।

मानव जाति के दो भाग हैं एक आर्य और दूसरा म्लेच्छ। आर्य खण्ड में आर्यों का निवास है। उनमें भी शक भील ऐसी जातियाँ हैं जो आर्य नहीं कहलातीं। म्लेच्छ अधिकांश में म्लेच्छ खण्ड और अन्तर्द्वीपों में निवास करते हैं।

आर्यों के भी कई भेद हैं। जो पवित्र तीर्थक्षेत्रों में रहते हैं वे क्षेत्रार्य; इक्ष्वाकु जैसे उत्तम कुल में उत्पन्न होने वाले जात्यार्य; वाणिज्यादि से आजीविका चलाने वाले सावद्यकर्मार्य; जो गृहस्थ हैं, संयमासंयमधारी श्रावक हैं वे अल्पसावद्यकर्मार्य, पूर्णसंयमी साधु असावद्यकर्मार्य, पवित्र चारित्र का पालन करके मोक्ष मार्ग की आराधना करने वाले चारित्रार्य; जो सम्यग्दर्शन के अधिकारी हैं वे दर्शनार्य कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त बुद्धि, क्रिया, तप, बल, औषध, रस, क्षेत्र और विक्रिया इन आठ विषयों सम्बन्धी ऋद्धिवाले भी आर्य हैं।

मध्यलोक में बहुत-सी कर्मभूमियाँ तथा भोगभूमियाँ हैं। जहाँ राज्यत्व,

---

[2] वहाँ विद्याचरण और जंघाचरण जा सकते हैं। (भगवती सूत्र)

[3] श्वेताम्बर साहित्य में ५६ अन्तर्द्वीप लिखे हैं। और वहाँ भी केवल अकर्मभूमि-सुभोग भूमि होने का विधान है; वहाँ के मनुष्य मनुष्य के आकार में ही हैं।

वाणिज्य, कृषिकर्म, अध्ययन, अध्यापन और सेवा आदि के द्वारा आजीविका प्राप्त की जाती है वह कर्मभूमि कहलाती है। जहाँ संसार-त्याग संभव है वह भी कर्मभूमि है। दूसरे शब्दों में, जहाँ पुण्य-पाप के उदय के कारण जीव कर्मलिप्त होता हो वह कर्मभूमि है। भोगभूमि में यह बन्धन नहीं है। सब मिलाकर १७० कर्मभूमि हैं। उनमें से जम्बूद्वीप में भरत और ऐरावत ये २ ; ३२ विदेह क्षेत्र में ; ६८ धातकी खण्ड में और ६८ आधे पुष्कर द्वीप में हैं। विदेह क्षेत्र की ३२ कर्मभूमियों में से प्रत्येक कर्मभूमि, भरत तथा ऐरावत क्षेत्र के समान विजयार्ध (वैताढ्य) पर्वत और दो-दो नदियों से ६ खण्डों में विभक्त है। विदेह क्षेत्र के चक्रवर्ती इन छः खण्डों के विजेता होते हैं।

जिस स्थान में वाणिज्य अथवा कृषि के द्वारा आजीविका प्राप्त नहीं की जाती, जहाँ राजा और प्रजा में कोई भेद नहीं है, और जहाँ मोक्षमार्ग संभव नहीं है वह भोगभूमि है। भरत तथा ऐरावत क्षेत्र, अवसर्पिणी काल के प्रथम तीन आरों तक भोगभूमि ही थे। ये दोनों क्षेत्र अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के आरम्भ से कर्मभूमि में परिणमित हो गए हैं। एवं अवसर्पिणी काल पूर्ण होने के पश्चात् उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीन आरों तक ये दोनों कर्मभूमि ही रहेंगे।

विदेह क्षेत्र में मेरुपर्वत के पूर्व तथा पश्चिम में ३२ कर्मभूमि हैं। इसके अतिरिक्त इस पर्वत की उत्तर-दक्षिण दिशा में भी दो उत्कृष्ट भोग भूमि हैं। वे क्रमशः देवकुरु और उत्तरकुरु कहलाती हैं। हेमवत और हैरण्यवत क्षेत्र जघन्य भोगभूमि, हरिवर्ष और रम्यक क्षेत्र मध्यम भोगभूमि हैं। जघन्य भोगभूमि में जीव की आयुः परिमाण एक पल्य, मध्यम में २ पल्य और उत्तम भोगभूमि में ३ पल्य होता है। जम्बूद्वीप की छः भोग भूमियों के अतिरिक्त धातकी खण्ड में १२ और पुष्कर द्वीपार्द्ध में १२ भोगभूमि हैं। इस प्रकार अढाई द्वीपों में सब मिलाकर ३० भोगभूमियां हैं। इन अढाई द्वीपों के अतिरिक्त अन्यत्र सब जगह भोगभूमि है, परन्तु फर्क इतना है कि वहाँ कोई मनुष्य नहीं है। इसे कुभोग भूमि भी कह सकते हैं। अन्तर्द्वीप और म्लेच्छ स्थान कुभोगभूमि ही हैं।

मनुष्य के अतिरिक्त जितने प्राणी आँख से दिखलाई देते हैं वे सब तिर्यंच कहलाते हैं। तिर्यंच मध्यलोक में रहते हैं। इनमें भी एकेन्द्रियादि बहुत से भेद हैं। मध्यलोक के सब भागों में एकेन्द्रिय होते हैं।[४]

---

४ ऐसा मालूम होता है कि जिनवाणी मासिक पत्र बन्द हो जाने के कारण इससे आगे का अंश प्रकट नहीं हो सका।

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ

[पूर्वानुवृत्ति]

गुजराती : कन्हैयालाल भाईशंकर दवे — अनु० भँवरलाल नाहटा

नमिनाथ

ये इक्कीसवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन नीलकमल और दिगम्बर मत से अशोक वृक्ष है। यक्ष भृकुटी, यक्षिणी गांधारी एवं दिगम्बर मतानुसार चामुण्डी है।

नमिनाथ भगवान की प्रतिमाएँ गुजरात में गिनती की ही मिलती हैं। अन्य सभी तीर्थंकरों की थोड़ी बहुत मूर्तियाँ प्राप्त हैं पर इनकी तो क्वचित् ही कहीं देखने में आती है। इसका क्या कारण होगा, पता नहीं। जैन समाज के लिए चौबीसों तीर्थंकर समान श्रद्धेय होने पर भी नमिनाथ की प्रतिमाएँ गुजरात में क्यों नहीं प्रचार में आईं यह समझ में नहीं आता। आबू पर विमलवसही के देहरी नं० ४ और ४५ में नमिनाथजी की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। इनके अतिरिक्त इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान नमिनाथ के मन्दिर या उनकी अन्य प्रतिमाएँ मिलने का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता। जैन सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वानगण इस विषय पर प्रकाश डालकर इसका शास्त्रीय समाधान उपस्थित करेंगे तो इस संप्रदाय के सम्बन्ध में जानने के इच्छुक जिज्ञासुओं पर महद् उपकार होगा।

नेमिनाथ

नेमिनाथ भगवान को पौराणिक के साथ-साथ ऐतिहासिक व्यक्ति मानना अनुचित नहीं होगा।

इनके पिता समुद्रविजय द्वारिका-सौरीपुर के राजेन्द्र और हरिवंश के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। इनका जन्म माता शिवादेवी से हुआ। जैन सम्प्रदाय में इनका चरित्र सुप्रसिद्ध होने से प्रचार भी अधिक हुआ मालूम पड़ता है। कितने ही जिनालयों में इनके जीवन के भव्य प्रसंग आलेखित मिलते हैं। राधा-कृष्ण के बारह मासों की भाँति नेमिनाथ और उनकी पत्नी राजुल के बारहमासे भी अनेक कवियों ने रचे हैं। इस प्रकार अन्य सभी तीर्थंकरों की अपेक्षा जैनसमाज में नेमिनाथ का चरित्र अधिक ओत-प्रोत हो गया मालूम पड़ता है। इनका लांछन शंख, यक्ष गोमेध, यक्षिणी अम्बिका दिगम्बर मत से

कुष्मांडी, चामर ढुलाने वाला उग्रसेन राजा, ज्ञानवृक्ष बेतस, मुख्य गणधर वरदत्त, प्रवर्त्तिनी दिन्ना और मुख्य भक्तरूप में वासुदेव (कृष्ण) को बतलाया है। इनका अपर नाम अरिष्टनेमि भी कहा जाता है। जब ये माता के गर्भ में थे तब इनकी माता के रत्नों का चक्र देखने के कारण इनका नाम भी चरितार्थ हुआ है। अन्य मत से धर्मचक्र के परिध समान (प्राणी मात्र पर एक जैसी कल्याण भावना) आदर्श वाले होने से इनका नेमिनाथ नाम पड़ा है। इन्होंने वरदत्त के यहाँ द्वारिका में प्रथम भिक्षा ली थी।

नेमिनाथ भगवान की सैकड़ों प्रतिमाएँ सारे गुजरात में प्राप्त हैं। गिरनार पर्वत इनकी मुख्य तपोभूमि, ज्ञानभूमि, दीक्षास्थान और निर्वाणस्थान कहलाता है अर्थात् गुजरात के साथ इनका खास सम्बन्ध है। गिरनार की पहली और पाँचवीं टोंक में इनके स्वतन्त्र मन्दिर हैं जो प्राक्कालीन हैं और प्रतिमाएँ भी ग्यारहवीं-बारहवीं शती जितनी प्राचीन हैं। आबू पर लुणिगवसही में ये मूलनायक रूप में विराजमान हैं। यहीं विमलवसही की देहरी नं० ४ में इनकी प्रतिमा स्थापित है। इसके अलावा शत्रुंजय पर छीपावसही की टोंक में, अहमदाबाद में टेमला की पोल में, शंखेश्वरजी में मूलनायक के पास, खंभात की मांडवीपोल में, मोयरापाड़े में, और पाटण के फोफलियावाड़ा में तथा सालवीवाड़ा के तलशेरिया मुहल्ले में नेमिनाथ भगवान का मन्दिर हैं। इन सबमें इनकी भव्य प्रतिमाएँ स्थापित हैं जिनमें कितनी ही पुरातनकाल की लगती हैं। इनके उपरान्त और भी नेमिनाथ भगवान की संख्याबद्ध प्रतिमा संप्राप्त है।

पार्श्वनाथ

ये तेईसवें तीर्थंकर हैं। इन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति-रूप में भी माना जाता है। महावीर स्वामी के चरित्र में इनके पूर्वज लोग पार्श्व प्रचलित धर्म के अनुयायी थे बतलाते हैं, इससे महावीर के पूर्व भी पार्श्वनाथ प्रस्थापित जैन धर्म वर्त्तमान था, ऐसा विदित होता है। पार्श्वनाथ के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से कितने ही प्रमाण मिले हैं। पार्श्वनाथ ई० सन् पूर्व आठवीं-नौवीं शताब्दी में हुए थे। इन्होंने बनारस के राजा अश्वसेन के यहाँ जन्म लिया था। पत्नी व राज्य त्याग कर तीसवें वर्ष में तीव्र वैराग्य धारण कर तपस्वी जीवन स्वीकार किया था। इनके जीवन में एक नाग ने अपूर्व भाग लिया था ऐसी पौराणिक आख्यायिका है।

इनका यक्ष पार्श्व या वामन, यक्षिणी पद्मावती, चामरधारी गणधर अजितराय, ज्ञानवृक्ष देवदारु है।

पार्श्वनाथ भगवान की सेकड़ों छोटी-बड़ी प्रतिमाएँ गुजरात में उपलब्ध हैं। कितने ही स्थल में तो स्थान पर से, तीर्थ पर से और कार्यकलाप से या अन्यान्य कारणों से पार्श्वनाथ के एक सौ आठ और एक हजार आठ नाम पड़ गए हैं। जैसे—जीरावला पार्श्वनाथ, चंपा पार्श्वनाथ, गोडी पार्श्वनाथ आदि। इस प्रकार पार्श्वनाथ भगवान का प्रचार छोटे-बड़े नगर-गाँवों में फैला हुआ होने से इनकी असंख्य प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। इतना ही नहीं, श्रद्धालु जैन समाज पार्श्वनाथ के प्रति अन्य सभी तीर्थंकरों की अपेक्षा अपूर्व प्रेम-भाव रखता ज्ञात होता है। ऐसी कितनी ही गुजरात की प्राचीन प्रतिमाओं का यहाँ उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा।

पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमाएँ दो प्रकार की मिलती हैं। एक खड़ी कायोत्सर्ग वाली और दूसरी बैठी हुई। किन्तु प्रत्येक मूर्ति में इनके मस्तक पर धरणेन्द्र का छत्र होता है। कितनी तो पाँच, सात, नौ, ग्यारह से लेकर हजार फणों तक की बनी हुई होती है। परन्तु प्रत्येक पार्श्वनाथ प्रतिमा के मस्तक पर नाग का छत्र होना आवश्यक है। काठियावाड़ की ढांक की गुफाओं में संप्राप्त पार्श्वनाथ प्रतिमाएँ प्राचीन काल की हैं। जूनागढ़ के पास ऊना गाँव से १॥ मील दूर अजाहरा गाँव के परिसर में स्थित पार्श्वनाथ प्रतिमा तृतीय शताब्दी की मानी जाती है। कड़ी में जैन विद्यार्थी भवन में रखी हुई पार्श्वनाथ प्रतिमा शक सं० ६१०, वि० सं० १०४५ की होने का इसके पृष्ठ भाग में उत्कीर्ण अभिलेख से ज्ञात होता है। बीजापुर के पास मूण्ड़ी गाँव से प्राप्त धातु मूर्त्तियों को जिन्हें कितने ही विद्वान जैन और कई बौद्ध भी मानते हैं, उनके छट्ठी शताब्दी का होना पृष्ठ भाग में उत्कीर्ण ब्राह्मी लिपि के लेख से प्रमाणित है। उनमें भी एक पार्श्वनाथ प्रतिमा है। पिण्डवाड़ा के महावीर स्वामी के मन्दिर में पार्श्वनाथ भगवान की सुन्दर मूर्त्ति विराजमान है। आबू पर लूणवसही के गूढ मण्डप में भी पार्श्वनाथ स्वामी की भव्य प्रतिमाएँ देखी जाती हैं। वहीं विमलवसही के गूढ मण्डप में इनकी अप्रतिम मूर्ति स्थापित की गई है। इनके अतिरिक्त शत्रुंजय पर बालाभाई और कई टूकों में, तलाजा में, प्रभास के सुविधिनाथ जिनालय में, शंखेश्वर में मूलनायक रूप में, पाटण के पास चारूप में, सार्थद और बांकानेर में पार्श्वनाथ भगवान के सुन्दर जिनालय हैं जिनमें इनकी प्राचीन और दर्शनीय प्रतिमाएँ विराजमान देखी जाती हैं। बम्बई के पायधुनी स्थित गोड़ी पार्श्वनाथ मन्दिर की मुख्य प्रतिमा सं० १०६७ के अभिलेख युक्त है। इसके अतिरिक्त पार्श्वनाथ भगवान की सेकड़ों प्रतिमाएँ गुजरात में उपलब्ध हैं।

महावीर

अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर महावीर हुए हैं। जैन सम्प्रदाय में इनका स्थान बहुत ही ऊँचा है। इनके प्रति श्रद्धालु जैन समाज अपूर्व भक्ति-भाव रखता है। इनके जीवन के कितने ही प्रसंग जैन मन्दिरों के स्तंभों, छतों व दीवारों पर उत्कीर्ण या चित्रित संप्राप्त हैं, इनके चरित्र से सम्बन्धित अनेकों ग्रन्थ लिखे गये हैं।

इनके शिष्यों में इन्द्रभूति गौतम मुख्य थे जिन्होंने इनके बाद जैन सम्प्रदाय के प्रचार को अच्छी तरह विकसित किया था। इनका लांछन सिंह, यक्ष मातंग और यक्षिणी सिद्ध नायिका है। इनके वीर, अतिवीर, महावीर, सन्मतिवीर और वर्द्धमान ये पाँच नाम कहलाते हैं। इनमें महावीर और वर्द्धमान ये दो नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। वर्द्धमान का अर्थ वृद्धि करने वाला। त्रिशला माता के गर्भ में आने के पश्चात् इनके पिता के यहाँ धन, समृद्धि और सत्ता की खूब वृद्धि होने से इनका नाम वर्द्धमान रखा गया था। प्रजा को सत्कार्यों में प्रेरित करे वह वीर, इस प्रकार अन्यान्य कारणों से इनके नाम पड़ने का शास्त्रकार कहते हैं। संक्षेप में महावीर ने जैन सिद्धान्तानुसार अपने अनुयायी समाज को सत्कार्यों में प्रेरित करने से इन्हें 'वीर' संज्ञा दी गई थी।

गुजरात में महावीर स्वामी की अनेक प्रतिमाएँ संप्राप्त हैं। आबू पर विमलवसही के देहरी नं० ७ व ४७ में, लूणवसही की देहरी नं० ११ व २८ में महावीर स्वामी की अभिनव मूर्तियाँ विराजित हैं। शत्रुंजय पर मूलनायक के मंदिर में, हाथण की चकली में, भूलवणी के सामने और आदीश्वरजी की टूंक में महावीर स्वामी के मन्दिर हैं। इनमें इनकी दर्शनीय प्रतिमाएं हैं। महुवा में जिवित स्वामी के मन्दिर में महावीर भगवान की एक प्राचीन प्रतिमा है। इसके अलावा प्रभास, जामनगर, अहमदाबाद शामला की पोल में, फतासा की पोल में, मोताशवाजी की पोल में, खंभात में मोवटी, माणेक चौक और चोकसी की पोल में महावीर स्वामी के मन्दिर हैं जिनमें छोटी-बड़ी अनेक प्रतिमाएं विद्यमान हैं।

भगवान महावीर की दीक्षा लेने की बड़ी ही तमन्ना लगी थी किन्तु ज्येष्ठ बन्धु के आग्रह से एक वर्ष गृहस्थाश्रम में अधिक रहे। फिर भी इनका जीवन साधु जैसा था। ऐसी प्रतिमा 'जीवित स्वामी' रूप में पहिचानी जाती है। डॉ० उमाकान्त शाह को ऐसी एक प्रतिमा मिली है जिसका वर्णन उन्होंने "कुमार" के दिसम्बर १९५४ के अंक में दिया है। वे इस प्रतिमा

को ई० सन् ४०० से ५०० के समय की मानते हैं। गुजरात में प्राप्त जैन प्रतिमाओं में यह एक अति प्राचीन मूर्त्ति कही जा सकती है।

आयागपट्ट और समवशरण

उपरोक्त तीर्थङ्करों की स्वतंत्र प्रतिमाओं के अतिरिक्त आयागपट्टों में भी ऐसी प्रतिमाएं मिलती हैं। ऐसे प्राचीन आयागपट्ट मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई में प्राप्त हुई जिनमें कितनी ही कुशान काल पूर्व की हैं, ऐसा इनके शिलालेखों से प्रमाणित है। इन आयागपट्टों के मध्य भाग में तीर्थंकर की ध्यानस्थ मूर्त्ति होती है, इसके चतुर्दिक् सुन्दर कलापूर्ण अष्ट मंगल उत्कीर्णित होते हैं। मथुरा से प्राप्त आयागपट्टों में प्रतिमा के नीचे लांछन व्यक्त किए हुए न होने से इसमें किस तीर्थंकर की प्रतिमा विराजमान की है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। इनसे जैन मूर्त्ति विधान में तीर्थंकरों की प्रतिमाएं आयागपट्टों में निर्माण करने की प्रथा प्राचीन काल से ही प्रचलित थी, इस ओर ध्यान आकृष्ट होता है। गुजरात से ऐसे कोई प्राचीन आयागपट्ट मिले ज्ञात नहीं होते।

आयागपट्टों के अतिरिक्त समवशरण में भी जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं देखने में आती हैं। समवशरण अर्थात् तीर्थंकरों के उपदेश श्रवणार्थ देवनिर्मित विशाल व्याख्यानशाला। ऐसी व्याख्यानशाला के भव्यशिल्प में तिर्यंच प्राणी, मनुष्य, देव-देवी आदि के लिए अलग-अलग प्राकार बनाये हुए होने से प्रत्येक समुदायों को विविध प्रकार से परिषद में शिल्प द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। या हिन्दू धर्म शास्त्रों में वर्णित मेरु की भाँति समवशरण में नीचे से ऊपर तक विभाग करके, उस प्रत्येक विभाग में प्राकार (किल्ले) की रचना करके, उन प्रत्येक के मध्य भव्य सिंहासन की कल्पना से उसमें तीर्थंकर प्रतिमा रखी जाती है।

गुजरात में ऐसे समवशरण पाषाण में, कहीं-कहीं काष्ठ में और धातुमय व भित्तिचित्रों में भी परिलक्षित होते हैं। ऐसा ही एक चांदी का समवशरण बड़ौदा में विपुल अर्थ व्यय से बनवाया गया था। अर्थात् गुजरात में समवशरण का प्रचार प्राचीन काल से रहा है। इनमें आबूतीर्थ का समवशरण अलौकिक, सजीवता व्यक्त करने वाले अद्भुत कला कौशल उपस्थित करता है। आबू की विमलवसही की पहली देहरी नं० २ में, मंदिर के प्रवेश द्वार और रंगमण्डप के बीच बड़े खण्ड के गुम्बज में, देहरी नं० ८ की छत में, देहरी नं० ६ के पंचकल्याणकों में चौथे कल्याणक में और देहरी नं० १३ के गुम्बज के प्रथम

वलय में अद्वितीय समवशरण उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त लूणगवसही की देहरी नं० ६ के द्वितीय गुम्बज का, अचलगढ स्थित कुंथुनाथ जिनालय का समवशरण भी अद्वितीय भावों का व्यक्ति करण करता है। राणकपुर के भव्य जिनालय में एक अप्रतिम समवशरण बनाया हुआ है जिसके समकक्ष जिनेश्वर भगवान की व्याख्यान सभा की सुन्दर प्रतिकृति अन्यत्र नहीं देखी जाती। इसके अतिरिक्त गुजरात के कितने ही प्राचीन अर्वाचीन मन्दिरों में छोटे-बड़े समवशरण उपलब्ध है।

परिकर

जैन मन्दिरों में पब्वासन पर मूर्त्तियों को स्थापित करने के लिए जो मुख्य पीठिका (सिंहासन) बनायी जाती है, उस पीठिका और बैठने के आसन आदि सभी भाग को परिकर संज्ञा दी जाती है। ऐसे परिकरों में कितने ही ऐसे अद्भुत और मनोरम कलाशिल्प वाले होते हैं जिन्हें देखते ही कोई दैवी कार्य जैसा मालूम पड़ता है। शिल्पशास्त्र के नियमानुसार लम्बाई-चौड़ाई प्रतिमा के अनुलक्षित करके बनाये जाने के कारण इसके प्रमाणोपेत विभाग करके विविध रूप और भाव बनाने में आते हैं।

सामान्यतः परिकर प्रतिमा की चौड़ाई से ड्योढ़ा और इसके सिंहासन की ऊँचाई-चौड़ाई से आधी करने का शिल्पशास्त्रकार कहते हैं।[१९] इसमें कैसा शिल्प बनाना है उसकी समालोचना करते शिल्पशास्त्रकार कहते हैं कि—परिकरों में यक्ष, यक्षिणी, सिंह, मृग की जोड़ी, कायोत्सर्ग, किनारे पर स्तंभ, उपरि भाग में तोरण, ग्राह, चामर और कलशधारी अनुचर, मकर-मुख, मालाधर, प्रतिमा के मस्तक के पृष्ठभाग में प्रभा मण्डल, मस्तक पर मृणाल छत्र (कमलदण्ड सह छत्र), तशार्ण देव-दुन्दुभि वादक, धर्मचक्र, नवग्रह, छत्रत्रय, अशोकवृक्ष पत्र, क्वचित् दिक्पाल और अग्रभाग में केवल ज्ञान मूर्त्ति आदि यथोक्त प्रकार से बनाना।[२०] साथ ही साथ परिकरों में कितने भाग करके प्रत्येक में कैसा शिल्प बनाना इसकी अद्यतन जानकारी विद्वान कलाधरों ने दी है। किन्तु विस्तारभय से इसका सूक्ष्म विवेचन यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा सका। इसके उपरान्त कितने ही परिकरों में अद्वितीय सुशोभन प्रम्तुत्यर्थ रथिका सहित जीरण अर्थात् पांच वर्तुल करके इसमें रथ जैसी आकृति बनाते हुए प्रत्येक में भिन्न-भिन्न

---

[१९] शिल्परत्नाकर २८१-१२ श्लो० १६६।

[२०] रूपमण्डन, अ० ६-३६।

देवों को विराजमान किया जाता है। ऐसे जोरणों में तीन रथिका वाले को ललित, पाँच को श्रीपूज्य और सात वाले को आनंदवर्द्धन जीरण कहा जाता है।[21] इनमें बतलाई हुई रथिकाओं में अन्य अनेक देवों के साथ हिन्दू धर्म के मुख्य देव ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चण्डिका आदि को भी इनके स्वतंत्र स्थानों में विराजित करना बतलाया है। संक्षेप तीर्थंकर प्रतिमाओं की अपेक्षा परिकरों के कलाविधान के लिए शिल्पी को गहन अभ्यास और अनुभव प्राप्त करना पड़ता है। क्योंकि इसके कलाशिल्प में कितना वैविध्य बुद्धि बल से प्रस्तुत करना पड़ता है। इसलिए कितने ही स्थानों में सादे पबान पर ही प्रतिमाएँ विराजमान की हुई होती हैं। फिर भी आबू, शत्रुंजय, गिरनार, पाटण, सेरिसा, भोयणी, राणकपुर आदि स्थलों में स्थित भव्य मन्दिरों में से अद्भुत कला-कौशल वाले परिकर संप्राप्त हैं। परिकर जैन मूर्ति विधान का अविभाज्य अंग होने से इसकी आवश्यक समीक्षा यहाँ की गई है।

प्रतिहार

जिस प्रकार हिन्दू मन्दिरों में प्रत्येक द्वार पर उसके प्रधान देव के द्वारपाल (प्रतिहार) बनाने का आदेश दिया है इसी प्रकार जैन मन्दिरों में भी उसके प्रत्येक द्वार पर द्वारपाल, इसकी दिशा के अनुसार बनाने का सूचन किया है। इतना ही नहीं इसके आयुध, उपकरण, अभिधान, शास्त्रीय रीति से रखने का उल्लेख रूपमण्डन और रूपावतार में व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है। निम्नोक्त कोष्ठक द्वारा इसका परिचय दिया जाता है :

नाम	दिशा	किस तरफ	दाहिने हाथ में	बायें हाथ में
१. इन्द्र	पूर्व	बायें	फल-वज्र	अंकुश-दण्ड
२. इन्द्रजय	,,	दाहिने	अंकुश-दण्ड	फल-वज्र
३. माहेन्द्र	दक्षिण	बायें	वज्र-वज्र	फल-दण्ड
४. विजय	,,	दाहिने	फल-दण्ड	वज्र-वज्र
५. धरणेन्द्र	पश्चिम	बायें	वज्र-अभय	सर्प-दण्ड
६. पद्मक	,,	दाहिने	सर्प-दण्ड	वज्र-अभय
७. सुनाभ	उत्तर	बायें	फल-बंसी	बंसी-दण्ड
८. सुरदुंदुभि	,,	दाहिने	बंसी-दण्ड	फल-बंसी

[21] अंजन, अ० ६-३९।

शास्त्रीय लक्षणान्वित प्राचीन जैनमन्दिरों में आज भी उपर्युक्त विधान वाले द्वारपाल प्रत्येक द्वार पर स्थापित देखने में आते हैं। इससे प्रतिहारों की परम्परा जैन सम्प्रदाय में पूर्व परम्परा से चली आती विदित होती है। ये सभी प्रतिहार नगर, पुर और गाँवों के देवमन्दिरों में स्थापित करने से सर्व विघ्नों के नाश कारक होते हैं ऐसा शिल्प शास्त्रियों ने कहा है में बतलाया है।

यक्ष और यक्षिणियाँ

देवमण्डल में यक्षों और विद्याधरों का विभाग अलग है। ये देवताओं के अनुचर रूप में माने जाते हैं। देवताओं के अनुचर होते हुए भी इनकी गणना देवयोनि में हुई है। इतना ही नहीं, विविध कामनाएं परिपूरणार्थ देवों की भाँति इनका भी पूजन अर्चन भिन्न-भिन्न विधि-विधानों द्वारा किया जाता है। उत्तर दिशा का दिक्पति कुबेर सर्व यक्षों का अधिपति अर्थात् यक्षराज माना जाता है। भारत में यक्ष पूजा का प्रचार प्राचीन काल से चला आया मालूम देता है।

जैन धर्म में तो इन्हें जिनेश्वर भगवान के अनुचर रूप में बताते हुए प्रत्येक तीर्थंकर के एक यक्ष और यक्षिणी (शासन देवता) होने का उल्लेख निर्वाणकलिका, लोकप्रकाश, प्रवचनसारोद्धार, प्रतिष्ठाकल्प आदि ग्रंथों में पाया जाता है। इनकी नियुक्ति तीर्थंकरों की सेवा करने वाले इन्द्रों ने की है। इसी से तीर्थंकरों के परिकरों में दाहिनी ओर यक्ष और वाम पार्श्व में यक्षिणी—शासनदेवी रखी जाती है। तीर्थंकरों के अनुचरों के अतिरिक्त भी अन्य कितने ही यक्षों का उल्लेख जैन धर्म शास्त्रों में उपलब्ध है, इनमें मणिभद्र मुख्य है और इसे यक्षेन्द्र के रूप में सम्बोधित किया जाता है।

जैन सम्प्रदाय में यक्ष और यक्षिणियों को जिन शासन के रक्षक देव के रूप में माना जाता है। यक्षों का समृद्धिशाली अर्थात् धनपति और विलासी रूप में शास्त्रकारों ने परिचय दिया है। तीर्थंकरों के परिकरों के अतिरिक्त भी यक्ष-यक्षिणियों की स्वतंत्र प्रतिमाएं देखी जाती हैं। गुजरात में भी कितनी ऐसी मिली है। चौबीसों यक्ष-यक्षिणियों की प्रतिमाएं नहीं मिली है, किन्तु कुछ मूर्त्तियाँ अलग-अलग रूप में पाई गई हैं। पालीताने में विमलवसही में यक्ष-यक्षिणियों की कितनी ही मूर्त्तियाँ हैं। गुजरात के बाहर भी भारत के अन्य प्रान्तों में यक्ष-यक्षिणियों की सुन्दर मूर्त्तियाँ मिलती हैं। बढवाण नगर के बाहर शूलपाणि यक्ष का मंदिर होने का उल्लेख मिलता है। इसके उपरान्त मणिभद्र यक्ष की प्रतिमाएँ गुजरात में और

सिरोही राज्य के गिरिवर, मालगाँव, बालदा, और मगरीवाड़ा में मिली है। ग्वालियर जबलपुर और झाँसी जिले में स्थित देवगढ़ के जैन मन्दिरों में यक्ष-यक्षिणियों की अभिनव कलाभिव्यक्ति वाली संख्याबद्ध मूर्त्तियाँ संप्राप्त हैं। देवगढ के जैन मन्दिरों में से तो चौबीस तीर्थंकरों में से बीस शासन देवियाँ (यक्षिणियाँ) विशालकाय, अद्वितीय शिल्प सौष्ठव युक्त और लावण्यवती संप्राप्त हैं जिनके रूप विधान में से भावग्राही सौन्दर्य झलकता हुआ मालूम पड़ता है। इन सभी यक्ष और यक्षिणियों को शास्त्रीय विधानों और गुजरात में संप्राप्त मूर्त्ति शिल्पों का परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

गोमुख

आदिनाथ या ऋषभदेव नाम से प्रसिद्ध प्रथम तीर्थंकर के यक्ष का नाम गोमुख है। इनके चार हाथ जिनमें प्रदक्षिणा क्रम से अर्थात दाहिने नीचे के हाथ से अनुक्रम से वरद, अक्षमाला, पाश और बिजोरा होना सूचित किया है। इनका वाहन हाथी होने का उल्लेख रूपमण्डन और रूपावतार के कर्त्ता ने किया है। प्रतिष्ठासारोद्धार में बिजोरा के बदले परशु होना बतलाया है। इसके नामानुसार इसका मुंह भी वृषभ जैसा बनाने का विधानकारों ने आदेश दिया है। दिगम्बर ग्रन्थकारों ने इसके मस्तक के पास धर्मचक्र होने का विशेष रुप में लिखा है।

गोमुख यक्ष की एक प्रतिमा शत्रुंजय गिरि पर मोतीशाह सेठ की टूंक के मुख्य मन्दिर में है। इसके चार हाथ बतलाये हैं जिनमें क्रमशः वरद, अंकुश, पाश और माला आदि धारण किए हुए मूर्ति अर्धपद्मासन रूप में गजारूढ़ है। इसके अतिरिक्त आदिनाथ के परिकरों में उनकी संख्याबद्ध मूर्त्तियाँ संप्राप्त हैं किन्तु केवल स्वतंत्र प्रतिमाओं का ही वर्णन देकर, विस्तारभय के कारण संतोष करते हैं।

चक्रेश्वरी

गोमुख यक्ष के साथ की शासन देवी चक्रेश्वरी है। इनके दोनों हाथों में चक्र होने से इनका यह नाम पड़ा है। इनका वर्ण गोमुख की भाँति स्वर्ण जैसा, हाथ आठ हैं जिनमें वरद, बाण, चक्र, पाश अंकुश, चक्र, वज्र और धनुष धारण किये हैं। इनका वाहन गरुड़ होने का उल्लेख रूपमण्डन, रूपावतार, निर्वाणकलिका, लोकप्रकाश, त्रिशष्टि-शलाका-

पुरुष-चरित्र और प्रवचनसारोद्धार में किया है। इन्हें अप्रतिचक्रा नाम से भी संबोधित करते हैं। इसके अतिरिक्त चक्रेश्वरी के लिए दूसरा विधान बारह हाथों का है। बारह हाथों में क्रमशः आठ में चक्र, दो में वज्र और अन्तिम दो में मातुलिंग व अभय बतलाकर गरुड़ पर पद्मासन से विराजति हैं रूपावतार कर्त्ता ने ऐसा निरूपण किया है। दिगम्बर ग्रन्थकार वसुनंदी प्रतिष्ठासार में भी इसी विधान का निर्देश करते हैं। इसके अलावा इनके चार हाथ होने का विधान भी दिया है। इन चारों हाथों में चक्रों की कल्पना की गई है। कोई-कोई ग्रन्थकार इनके सोलह हाथ का भी उल्लेख करते हैं। इन सभी वर्णनों से ज्ञात होता है इनके चार, आठ, बारह या सोलह हाथ बनाने की विधायकों ने कल्पना की है।

गुजरात में चक्रेश्वरी देवी की कितनी ही सुन्दर मूर्त्तियां उपलब्ध हैं जिनमें अधिकांश चतुर्भुजी हैं। प्रभास पाटण में सुविधिनाथ भगवान के मंदिर में चक्रेश्वरी की एक प्रतिमा है जिसके चार हाथों में ऊपर के दोनों में चक्र और नीचे वालों में माला व शंख धारण किये हैं। इसके अलावा अन्य भी कितनी प्रतिमाएं मिली हैं। जिनमें गिरनार पर वस्तुपाल तेजपाल की टूंक में वाम पक्ष के गवाक्ष में, घोघा के नवखंडा पार्श्वनाथ जिनालय में, शत्रुंजय पर सबसे ऊंची टूंक में, मोतीशाह सेठ की टूंक के मुख्य देरासर में, अचलेश्वर (आबू) के एक जैनमन्दिर में और वडनगर के पीठोरी दरवाजा के बाहर पीठोरी माता के स्थान से मिली हुई प्रतिमाएँ मुख्य हैं। वडनगर में संप्राप्त चक्रेश्वरी की मूर्त्ति के विधान में कितना ही फेर-फार है। इनमें से एक में चक्रेश्वरी के चार हाथ हैं जिनमें ऊपर के दोनों हाथों में चक्र और नीचे के एक हाथ से बालक को धारण किए, दूसरे हाथ की अंगुली से संलग्न एक बालक दिखाया है। जब कि यहाँ की दूसरी मूर्त्ति के चार हाथों में ऊपर के दो में चक्र और नीचे वालों में माला व शंख है। बारह और सोलह भुजा-धारिणी कोई प्रतिमा गुजरात से प्राप्त होने की सूचना नहीं है किन्तु प्राचीन जिनालयों में क्वचित् वैसी प्रतिमाएं मिलनी संभव है। मध्य प्रान्त के देवगढ़ के एक जिनमन्दिर में से सोलह हाथ धारिणी चक्रेश्वरी की मनोरम प्रतिमा मिली है जिसका भास्कर्य उच्चकोटि का है। यहाँ की कला का अप्रतिम गौरव प्रसारित है। हिन्दू धर्म की वैष्णवी और जैनों की चक्रेश्वरी का कलाविधान अधिकांश मिलता जुलता है।

वडनगर में आदिनाथ भगवान का प्राचीन मन्दिर है जो दशवीं शताब्दी में निर्मित हुआ होगा, ऐसा उसके स्थापत्य से मालूम होता है। इस मन्दिर का तेरहवीं शताब्दी में फिर से जीर्णोद्धार हुआ। इस समय कितना ही प्राचीन भाग विद्यमान रखकर अन्य भाग भव्य निर्माण होने का इसमें किए गए परिवर्तनों से सूचित होता है। इस मन्दिर की एक देवकुलिका में आदिनाथ भगवान के गोमुख यक्ष और यक्षिणी चक्रेश्वरी की सुन्दर प्रतिमा स्थित है जो दशवीं या ग्यारहवीं शताब्दी की अनुमानित है। इसके अतिरिक्त मन्दिर के बाहर की ओर भद्र में यक्ष और यक्षिणियों की कितनी ही अभिनव प्रतिमाएँ रखी हुई है, जिनमें चक्रेश्वरी यक्षिणी की प्रतिमा कला की दृष्टि से अपूर्व मालूम देती है। ये मूर्तियाँ तेरहवीं शताब्दी से अर्वाचीन तो नहीं ही हैं। इस प्रकार जैन यक्ष और यक्षिणियों के संख्याबद्ध प्राचीन रूप इस मन्दिर में संप्राप्त है।

महायक्ष

यह अजितनाथ भगवान का यक्ष है। इसके चार मुख, आठ हाथ हैं जिनमें अनुक्रम से वरद, मुद्गर, माला और पाश दाहिने में, जबकि बिजोरा, अभय, अंकुश और शक्ति बाँयें हाथ में है। वर्ण श्याम और वाहन हाथी होने का विधान रूपमण्डन, रूपावतार, आचारदिनकर, प्रवचनसारोद्धार, निर्वाण-कलिका और लोकप्रकाश आदि में बतलाया है। दिगम्बरों के प्रतिष्ठासारोद्धार में इसके आठ हाथों में चक्र, त्रिशूल, कमल और अंकुश दाहिने में और तलवार, दण्ड, कुल्हाड़ी तथा वरदमुद्रा बायें में व इसका वर्ण सुवर्ण जैसा सूचित किया है। इस प्रकार उभय संप्रदाय वालों ने महायक्ष के विधान में कितने ही फेर-फार करते हुए आयुधों में भी अलग-अलग नाम दिये हैं।

इस यक्ष की कोई स्वतंत्र प्रतिमा जानने में नहीं आई, किन्तु अजितनाथ भगवान के परिकरों में इसकी कितनी ही छोटी-मोटी मूर्त्तियाँ परिलक्षित होती हैं।

अजिता

अजितनाथ भगवान की शासनदेवी अजिता के रूप विधान के लिए रूपावतार का कर्त्ता इसे चार हाथ, जिनमें वरद, पाश, बीजपूरक और अंकुश, वर्ण श्वेत व मकर वाहन बतलाया है। जबकि निर्वाणकलिका, लोकप्रकाश शिल्परत्नाकर त्रिषष्टि-शलाका में इसे लोहासनारूढ—लोहे के आसन पर बैठे सूचित किया है। दिगम्बर सम्प्रदाय में इसके चारों हाथों में वरद, अभय,

शंख और चक्र बतलाते हुए इसका रोहिणी नामोल्लेख किया है। इन दोनों मतों के विधानों में केवल आयुधों का ही अन्तर मालूम देता है।

अजिता या अपराजिता की एक सुन्दर प्रतिमा देवगढ़ के किले में स्थित एक जिनालय में संप्राप्त है। इसके अतिरिक्त इसकी कोई स्वतंत्र प्रतिमा गुजरात में प्राप्त होना अज्ञात है। अजितनाथ भगवान के परिकरों में इसकी प्रतिमा मिलती है।

त्रिमुखयक्ष

यह संभवनाथ स्वामी का यक्ष कहलाता है। इसके तीन मुख, तीन नेत्र, छः हाथ हैं जिनमें नकुल, गदा और अभय और बायें में बिजोरा, सर्प और माला है। वर्ण श्याम और वाहन मयूर होने का विधानकार विधान दिया है जबकि दिगम्बर ग्रन्थकार इसके दाहिने हाथ में चक्र तलवार और अंकुश एवं बायें हाथ में दंड, त्रिशूल और करवत की कल्पना प्रतिष्ठासारोद्धार आदि में बतलाते हैं।

त्रिमुख यक्ष की स्वतंत्र प्रतिमाएँ क्वचित् ही मिलती हैं किन्तु संभवनाथ के परिकरों में छोटी-बड़ी मूर्त्तियाँ उत्कीर्णित देखने में आती हैं।

दुरितारी

त्रिमुख यक्ष के साथ की यह यक्षिणी है। इसका वर्ण गौर, वाहन महिष (भैंसा), हाथ चार जिनमें माला, वरद, फूल और अभय धारण करने का रूपावतार में कथन है जबकि निर्वाणकलिका, लोकप्रकाश और शिल्परत्नाकर में यही वर्णन लिखते हुए वाहन मेष (घेटा) सूचित किया है। दिगम्बरों के प्रतिष्ठासारसंग्रह में उसका नाम प्रज्ञप्ति बतलाते हुए इसके छः हाथ जिनमें परशु, अर्धचन्द्र, फल, तलवार, दण्ड और वरदमुद्रा का उल्लेख किया है। विशेष में इसके वाहन पक्षी की कल्पना की है। कोई कोई ग्रंथकार इसका वाहन हंस भी लिखते हैं।

दुरितारी या प्रज्ञप्ति की गणना विद्या-देवियों में भी होती है। इससे यह एक सरस्वती का अपर स्वरूप होना मालूम देता है। इसका वाहन हंस और इसके यक्ष का वाहन मोर इस कल्पना की पुष्टि करते हैं। इस यक्षिणी की स्वतंत्र मूर्ति यक्षिणी के रूप में गुजरात में प्राप्य हो ऐसा अज्ञात है। विद्यादेवी के रूप में प्रतिमा मिली है जिसका विवेचन विद्यादेवी के प्रसंग में प्रस्तुत किया जाएगा। केवल संभवनाथ स्वामी के परिकरों में यक्ष के साथ इसकी भी कई मूर्तियाँ प्राप्त हैं।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

कुशल निर्देश ।। मार्च १९८१

इस अंक में है 'आत्म साक्षात्कार का अनुभव क्रम' (श्री सहजानन्दघनजी), 'अकल कला खेले नर ज्ञानी स्वरूपस्थ श्री राजचन्द्र' (जयेन्द्र शाह, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'दिगम्बर विद्वान भागचन्द रचित उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला वचनिका' (म० विनय सागर), प्रभावक चरित्र पर्यालोचन 'श्री वीराचार्य' (श्री कल्याण विजयजी, अनु० भँवरलाल नाहटा), 'जय तिहुअण स्तोत्र की दो भण्डारित गाथाएँ' (सूरजराज बाड़ीवाल), कथा 'सूरदेव का भाग्योदय' (भँवरलाल नाहटा) ।

जैन जगत ।। मार्च १९८१

इस अंक में है 'स्याद्वाद : विभिन्न समन्वय विधियाँ और शून्यवाद' (आचार्य श्री आनन्द ऋषिजी), 'हास्य और व्यंग्य के दो महत्वपूर्ण जैन कथा ग्रन्थ' (अगरचन्द नाहटा) ।

तुलसी प्रज्ञा ।। अप्रैल-जुलाई १९८०

निर्ग्रन्थाचार विशेषांक

इस अंक में है 'तेरापन्थ की उद्भवकालीन स्थितियाँ' (आचार्य तुलसी), 'श्री मज्जयाचार्यकृत आराधना' (युवाचार्य महाप्रज्ञ), 'जैन श्रमणाचार' (डा० नथमल टाटिया), 'प्रायश्चित की एक विधा : परिहार तप' (साध्वी यशोधरा), 'पात्र-अपात्र एक समीक्षा' (साध्वी अशोक श्री), 'प्रज्ञा और साधना के प्रकाश पुञ्ज श्री मज्जयाचार्य' (मुनि महेन्द्रकुमार), 'Aspects of Jaina Monasticism' (Dr. Nathmal Tatia & Muni Mahendra Kumar).

श्रमण ।। मार्च १९८१

पण्डित सुखलाल संघवी विशेषांक

श्रद्धांजलियाँ तथा संस्मरण के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन बौद्ध और

वैदिक साहित्य—एक तुलनात्मक अध्ययन' (श्री देवेन्द्र मुनि), 'प्राचीन भारतीय वाङ्मय में पार्श्व चरित' (डा० जयकुमार जैन), 'शम्बूक आख्यान—जैन तथा जैनेतर सामग्री का तुलनात्मक अध्ययन' (बिमलचन्द शुक्ल), 'आचार्य शाकटायन (पाल्यकीर्ति) और पाणिनी' (रामकृष्ण पुरोहित), 'मुनिश्री देपालः जीवन और कृतित्व' (डा० सनतकुमार रंगढिया), 'मेरुतुंग के जैन मेघदूत का एक समीक्षात्मक अध्ययन' (रविशंकर मिश्र), 'जैनाचार्यों द्वारा आयुर्वेद साहित्य निर्माण में योगदान' (राजकुमार जैन) ।

तित्थयर

वर्ष ४

मई १९८०-अप्रेल १९८१

वार्षिक सूची

	इतिहास	
	कुमारपालदेव	७७, १०७
	जयसिंह देव	४३
	भोज और भीम प्रबन्ध	८
	वस्तुपाल-तेजपाल	१३९
	कथानक	
पूरणचन्द सामसुखा	सनत् कुमार	३५७
	जीवनी	
	पूरणचन्दजी नाहर	३७
पूरणचन्द सामसुखा	भगवान पार्श्वनाथ	२२९
राजकुमारी बेगानी	भेद विज्ञान की विचक्षण साधिका	५
हरिसत्य भट्टाचार्य	भगवान पार्श्वनाथ	२१, ५४
	जैन पत्र-पत्रिकाएँ	
	जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या	३१, ६३, ९६, १२८, १६०, १९२, २२३, २५६, २८८, ३१८, ३५०, ३८१
	नाटक	
	श्रीपाल	४८, ८१, ११३, १४२, १७६, २१३, २३४, २७५, ३०५, ३३३
	निबन्ध	
	कलकत्ता के जैन मन्दिर	६९
	कलकत्ता के जैन मन्दिर और एक विस्मृत शिल्पी	१६५, २०६
कन्हैयालाल भाईशंकर दवे [अनु० भँवरलाल नाहटा]	जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ	२४५, २८४, ३१३, ३४६, ३६९
गौपेन्द्र कृष्ण वसु	बंगाल में जैन युग की स्मृति	३२५
नेमिचन्द्र जैन	हिन्दी जैन साहित्य	११८, १५१, १८४
पूरणचन्द सामसुखा	जैन श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति	१९७

युधिष्ठिर माझी	पुरुलिया की पुराकीर्ति और प्राचीन सराक संस्कृति	२६३
—	सीमान्त बंगाल की सराक संस्कृति	२६१
राजनारायण पाण्डेय	जैन धर्म में उपासना	१६
हरिसत्य भट्टाचार्य	जीव	२१८, २४१, २८०, ३०६, ३४०, ३६०
—	जैन विज्ञान	८७, १०१, १३३

चित्र

कार्तिक महोत्सव पर निकलने वाला जुलूस, कलकत्ता	१६६
गौड़ी पार्श्वनाथ	१६४
छड़रा का सराक जैन मन्दिर	२६५
जैन सरस्वती	१३२
पर्युषण पर्व में मस्तक पर कल्प सूत्र ले जाते हुए	१००
पाड़ा ग्राम का सराक जैन मन्दिर	२६५
पाल कालीन पार्श्वनाथ	३२४
पूरनचन्द नाहर	३६
प्राचीन जैन मन्दिर, सिद्धेश्वर, बाँकुड़ा	४
भगवान पार्श्वनाथ, आन्ध्र प्रदेश	२२८
बहिर्भाग की शिल्प कला, जैन मन्दिर, बराकर	२६२
विचक्षण श्रीजी महाराज	५
शिवासन पर प्रतिष्ठित सराक जैन मूर्त्ति	३०१
शीतलनाथ स्वामी का मन्दिर	६८
सरस्वती, चिन्तामणि जैन मन्दिर, बीकानेर	३५६
सराक जैन मन्दिर का माडल	२६६
सराक जैन मन्दिर, बराकर	३०१
सराक जैन मूर्त्ति	२६६
सराक जैन मूर्त्ति	३०१
सराक जैन मूर्त्ति का पद्मासन	२६६
सराकों का मिलन स्थल दापुनिया का मन्दिर	२६०

Vol. IV No. 12 : Titthayara : April 1981
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001